सबके लिए शिक्षा | रास्ते की चुनौतियाँ

हृदय कान्त दीवान

यह विचारधारा काफ़ी नई है कि शिक्षा सबके लिए हो और यह सुनिश्चित किया जाए कि सभी पढ़ना और लिखना सीखें। साथ ही सभी के पास शिक्षा के सभी स्रोतों और विकल्पों तक पहुँच हो। यह उस आन्दोलन का हिस्सा है जो एक ऐसे समाज को विकसित करना चाहता है जो सभी मनुष्यों का सम्मान करे और उनके साथ समानता का भाव रखे। यह आन्दोलन एक सदी से भी कम पुराना है और अभी तक दुनिया का एक बड़ा हिस्सा इस आन्दोलन में शामिल नहीं है। नीति और अन्तर्राष्ट्रीय समझौतों तथा घोषणाओं के बावजूद यह सिद्धान्त उन जगहों पर भी व्यापक रूप से स्वीकृत नहीं है जहाँ यह अनिवार्य है।

सामाजिक पदानुक्रम को बनाए रखना

समाज के सभी सदस्यों को अवसर प्रदान करने का यह सूक्ष्म विचार ऐतिहासिक रूप से प्रसारित असाम्यपूर्ण व्यवहार और अधिकांश लोगों के लिए अवसरों की कमी वाली स्थिति से दूर हटने की ओर एक बड़ा क़दम था। भले ही बच्चों के लिए शिक्षा का विचार किसी न किसी रूप में पहले के कई समाजों का हिस्सा रहा हो, लेकिन इनमें से अधिकांश में, सभी बच्चों को प्रदान की गई शिक्षा समान नहीं थी और यह अनिवार्य भी नहीं थी। कई स्थानों पर अलग-अलग पृष्ठभूमि के बच्चों के लिए विभिन्न प्रकार के स्कूल थे, यहाँ तक कि उनकी पाठ्यचर्या की अपेक्षाएँ और तरीक़े भी अलग-अलग थे। इन स्कूलों का सिद्धान्त और स्कूलों को निर्देशित करने वाला व्यापक सिद्धान्त काफ़ी हद तक सामाजिक सम्बन्धों और सामाजिक व्यवस्था को बनाए रखने के लिए था। अठारहवीं शताब्दी के ज़ार निकलस का यह कथन इस बात को अच्छी तरह समझाता है :

"यह ज़रूरी है कि प्रत्येक स्कूल में पढ़ाए जाने वाले विषय और पढ़ाने के तरीक़े, बच्चों के भविष्य के लक्ष्य के अनुसार ही हों ताकि प्रत्येक बच्चा उस स्तर से ऊपर उठने का इरादा ना करे जो कि उसका प्रारब्ध माना गया है।"

शिक्षा का यह विचार उस विचार से बहुत भिन्न है, जो ऐसी सामाजिक गतिशीलता की आशा करेगा और उसे अनुमत करेगा जिसमें सामाजिक स्थितियों और सामाजिक पदानुक्रम की निरन्तरता क़ायम रहे, जो असाम्यपूर्ण सामाजिक व्यवस्था के विचार की बुनियाद का दर्शन है। यह हाल के कुछ दार्शनिक दृष्टिकोणों के नितान्त विपरीत है। उदाहरण के लिए हाल ही में व्यक्त किए गए मानव क्षमता सिद्धान्त को ही लीजिए। अमर्त्य सेन इसके एक मुख्य प्रस्तावक हैं। इस सिद्धान्त का तर्क है कि शिक्षा बच्चों की क्षमताओं और आकांक्षाओं के निर्माण का तरीक़ा है ताकि वे समाज का हिस्सा बनने में अपनी भूमिका ख़ुद चुन सकें। यह चुनाव करते समय वे उन सभी सम्भावनाओं से अवगत हों जो उनके सामने हैं और उनमें से किसी भी भूमिका में ख़ुद को सशक्त महसूस करें। शिक्षा से की जाने वाली यह अपेक्षा अन्तर्राष्ट्रीय समझौतों और शिक्षा के अधिकार की योजना में की गई अपेक्षा से कहीं अधिक है। अभी तो निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा का अधिकार भी बहुत संघर्ष के साथ आया है और इसके कार्यान्वयन के लिए प्रतिबद्धता में बहुत रिक्तियाँ हैं। उदाहरण के लिए, यह उतने स्पष्ट रूप से शिक्षा के उद्देश्यों और मंशाओं को निर्दिष्ट नहीं करता है, जिस तरह से मानव क्षमता की रूपरेखा करती है। तो, मुद्दा यह है कि हालाँकि सारे समाज चाहते हैं कि बच्चे किसी तरह से शिक्षित हों, लेकिन दार्शनिक सिद्धान्तों और उद्देश्यों में भिन्नता के कारण शिक्षित करने की मंशा व सोची गई प्रणालियाँ बहुत अलग हो सकती हैं। इसलिए हमें यह सोचने की आवश्यकता है कि सारे समाज सभी बच्चों को शिक्षित क्यों करना चाहते हैं और उनके लिए उपयुक्त शिक्षा क्या है।

इस बात की आवश्यकता तो स्पष्ट है कि इन्सानों के सभी बच्चों को समाज द्वारा सिखाया जाए और उनमें सीखने की क्षमता हो। यह इन्सान के रूप में विकास और समाजीकरण की प्रक्रिया का अनिवार्य हिस्सा है। उपलब्ध मानव ज्ञान में वृद्धि होने के कारण शिक्षा की आवश्यकता परिवार द्वारा प्रदान की जाने वाली शिक्षा से अधिक होती गई; अतः शिक्षकों का और कुछ संगठित मंच तथा संरचनाओं का उदय हुआ ताकि वे बच्चों को पढ़ा सकें। परिणामस्वरूप, विभिन्न समाजों और समुदायों में विभिन्न प्रकार के स्कूल सामने आए। यह शिक्षक और यह संगठित मंच आजकल के स्कूलों की प्रकृति से बहुत अलग थे। उन्हें न तो राज्य द्वारा वित्तीय पोषण मिलता था, न ही वे राज्य द्वारा चलाए जाते थे। सिर्फ़ यही नहीं वे सभी के लिए उपलब्ध नहीं थे और लोकहित के लिए भी नहीं थे। वे काफ़ी हद तक कुलीन वर्ग की भलाई और राज्य के रखरखाव के लिए थे।

उस समय की शिक्षण विधियाँ मौखिक थीं और इनमें उन नियमों, विनियमों, आदर्शों और रीति-रिवाजों का सार शामिल था जिन पर समुदाय आधारित थे। सिखाए जा रहे शास्त्रों में जीवन और अस्तित्व के परिप्रेक्ष्य और दृष्टिकोण का विकास भी शामिल था। यह सिखाए जाने वाले व्यवहार के तरीक़ों और रीति-रिवाजों में अन्तर्निहित था। इसके अलावा प्रकृति, तर्क के नियम, विज्ञान, व्यापार और शिल्प के साथ-साथ उपलब्ध चिकित्सा ज्ञान के बारे में भी सिखाया जाता था। इन्हें सिखाने के कई आवश्यक सिद्धान्त समान हो सकते हैं, लेकिन सिखाने के रूप तथा संरचनाएँ विविध थीं, और इसलिए विषय सामग्रियाँ भी। हालाँकि ऐसी कोई विवशता नहीं थी कि सभी बच्चों को औपचारिक रूप से इसकी या किसी अन्य ज्ञान की शिक्षा दी जाए।

हम यह भी कह सकते हैं कि जैसे-जैसे समाज विकसित हुए, वैसे-वैसे स्कूलों की प्रकृति, उन्हें कैसे चलाया जाता था और उनमें क्या पढ़ाया जाता था, वह सब भी बदल गया। और जैसे-जैसे हम तुलनात्मक रूप से आज के क़रीब आते हैं, यानी कि पन्द्रहवीं शताब्दी के आस-पास की अवधि में, शिक्षा का नेतृत्व उन संस्थानों द्वारा किया जाने लगा जो किसी न किसी रूप में आध्यात्मिक और धार्मिक आधार से जुड़े थे (इसके उदाहरण हैं— आश्रम स्कूल, मदरसा, कॉन्वेंट, मठ)। आध्यात्मिक रूप से प्रवृत्त यह सभी संरचनाएँ संगठित निकायों का हिस्सा नहीं थीं और कई समाजों में तो यह व्यक्तिगत शिक्षकों द्वारा संचालित की जाती थीं। क्या सीखा जाना चाहिए और क्या सिखाया जाए व किसका आकलन किया जाए, यह भी समाज-दर-समाज और वास्तव में संस्था-दर-संस्था था।

शिक्षा की प्रक्रिया में सभी बच्चों को शामिल करने का सवाल इसलिए पैदा हुआ ताकि माता-पिता को उन जगहों पर काम करने का अवसर मिल सके जहाँ उनके काम करने के घण्टे तय थे और जहाँ कार्य करने वालों को समय और कार्य करने के निश्चित तरीक़ों का पालन करना होता था। इसके अलावा, कुछ कौशल भी आवश्यक थे, उदाहरण के लिए, बच्चे को निर्देशों का पालन करने में सक्षम होना चाहिए। इसलिए जैसे योद्धाओं को और उच्च वर्गीय कुलीन लड़कियों को समाज की सम्भ्रान्त महिला होने के लिए प्रशिक्षण दिया जाता था, वैसे ही अब इस बात के लिए भी एक कारण था कि अन्य पृष्ठभूमि के बच्चे भी स्कूल में हों। एक व्यापक समूह को शामिल करने के लिए शिक्षा का विस्तार किया गया था, हालाँकि सभी बच्चे सीख सकते हैं या नहीं— इस पर गरमागरम बहस भी हुई। जो यह मानते थे कि सभी बच्चों को किसी न किसी तरह से पढ़ाया जा सकता है, और जो यह मानते थे कि ऐसा नहीं हो सकता— उन लोगों के बीच तनाव जारी रहा। यह बात सुकरात द्वारा ग़ुलाम लड़के को पढ़ाने वाली कहानी से स्पष्ट है। इसी तरह अँग्रेज़ी के एक प्रोफ़ेसर द्वारा एक अलग पृष्ठभूमि की लड़की को पढ़ाकर उसे 'लेडी' बनाने और उस जैसा ही व्यवहार करने के बारे में बनी फ़िल्म (माइ फेयर लेडी) उस संघर्ष को इंगित करती है जो समावेशन के बारे में समाज की चेतना में रहा है।

हालाँकि, सामाजिक और आर्थिक रूप से वंचित बच्चों द्वारा दिए गए सीखने के सबूत, लड़कियों द्वारा विज्ञान और गणित में दिखाई गई क्षमता और इसी तरह के अन्य उदाहरणों ने धीरे-धीरे व्यवस्था को इस बात के लिए मजबूर किया कि उन्हें, कम से कम काग़ज़ पर, समान रूप से स्वीकार किया जाए। लेकिन व्यवहार और सोच में, सबूत खोजने के लिए किए गए शोध के प्रयासों, तर्क करने के लिए चुने हुए उपाख्यानों के उदाहरण और अन्य साधनों का उपयोग यह दर्शाने के लिए किया जाता है कि वंचित बच्चे और बालिकाएँ कमतर हैं, और अमूर्त तथा जटिल विचारों को सीखने में असमर्थ हैं। निर्णायक रूप से असाम्यपूर्ण व्यवहार को उचित ठहराने के लिए भी बहुत सारे प्रयास किए जाते हैं और इसके लिए पिछले कर्म या वर्तमान सामर्थ्य और क्षमता का हवाला दिया जाता है।

अन्ततः, मनुष्यों की समानता में विश्वास करने वालों की वकालत और अन्तर्निहित तुलनीय अक्षमता के ख़िलाफ़ भारी सबूतों के कारण नीति निर्धारण और रूपरेखा के उस आधार में बदलाव हुआ जिसके अनुसार सभी बच्चों को शिक्षित होने की आवश्यकता नहीं थी और वास्तव में, उनमें से अधिकांश सीखने के लिए सक्षम भी नहीं थे।

जैसा कि ऊपर बताया गया है, बहिष्कृत बच्चों में बड़ी संख्या में लड़कियाँ शामिल थीं क्योंकि उन्हें न केवल शैक्षिक प्रक्रियाओं और अनुसन्धान नेतृत्वकर्त्ताओं जैसे कई और अन्य वरिष्ठ पदों से, बल्कि लगभग सभी मामलों में संरचना के स्तर पर ही बाहर रखा गया था। जिन कुछ महिलाओं को शिक्षित किया गया, उन्हें भी लड़कियों के लिए शिक्षा के सीमित ढाँचे में शिक्षित किया गया था, न कि सभी बच्चों के सार्वभौमिक कार्यक्रम के माध्यम से। एक सार्वभौमिक विद्यालय योजना में सभी लड़कियों को शामिल करने और उनसे गणित, विज्ञान, इंजीनियरिंग आदि की पढ़ाई करने की अपेक्षा करना अभी भी व्यापक रूप से स्वीकार्य नहीं है, यहाँ तक कि उन लोगों के लिए भी जो उन्हें शिक्षित करने और उनकी शिक्षा को सम्भव बनाने का कार्य करते हैं।

इसलिए शिक्षा की प्रक्रिया में सभी बच्चों को शामिल करने के प्रयास में राज्य और आम लोगों की भूमिका को पहचानना होगा। शिक्षा की एक लागत भी होती है : स्कूल की लागत,

बच्चे को स्कूल भेजने में परिवार द्वारा लगने वाली लागत और स्कूल के बाद सीखने में बच्चे की सहायता करने में लगने वाली लागत व क्षमता। कम आय होने के कारण कई परिवारों के लिए स्कूल के बाद सीखने में बच्चे की सहायता पर होने वाले ख़र्चे के लिए धन जुटा पाना सम्भव नहीं होता।

जैसा कि मैंने शुरुआत में कहा है, सभी को शिक्षित करने के दृष्टिकोण के बारे में प्रमुख समझ यह है कि वे समाज के उपयोगी सदस्य बनें और एक स्थिर समाज बनाने में मदद करें। इसका एक निहितार्थ है कि प्रत्येक बच्चे को उस भूमिका के अनुसार शिक्षा प्राप्त करनी चाहिए जो उसके लिए तय की गई है।

नए कुलीन वर्ग का उदय

समाज के लोकतंत्रीकरण,उद्योगीकरण और अवसरों के पैदा होने से शिक्षा आवश्यक हो गई थी और इसीलिए बड़ी संख्या में लोगों के लिए सम्भव हो सकी। पहले की तुलना में स्कूलों में अधिक बच्चे (अब तो और अधिक हैं) थे। समाज की बढ़ती जटिलता और उत्पादन व प्रबन्धन के लिए आवश्यक कौशलों के कारण विविध प्रकार के कौशलों से लैस व्यक्तियों की माँग (जो आज भी है) बहुत बढ़ गई। यहाँ तक कि जो लोग हाथों से काम करते थे, उनमें से कई ऐसे थे जिन्हें विशिष्ट शिक्षा और कौशल की आवश्यकता थी जो अर्थव्यवस्था के लिए महत्त्वपूर्ण थे। उत्पादन के साधनों और बाज़ार की प्रकृति में बदलाव के बाद कुछ गतिशीलता आई। इसके कारण अधिक मिश्रण हुआ और एक नए कुलीन वर्ग का उदय हुआ। यह कुलीन वर्ग नेतृत्व के साथ-साथ आर्थिक लाभ भी साझा करना चाहता था। बढ़ती हुई अर्थव्यवस्था, प्रौद्योगिकी और इस संघर्ष की वजह से पहुँच, चयन और बहिष्करण की विधि के लिए प्रमुख मानदण्ड के रूप में 'प्रतिभाशाही' (meritocracy) का आगमन हुआ। इसे लोकतंत्र और कल्याण की मौजूदा धारणाओं के साथ जुड़ना था। इसी कारण से शिक्षा का विशिष्ट होना और शिक्षा का बड़ी संख्या के लिए तथा बच्चों के विविध समूहों के लिए होना— इन दोनों विचारों के बीच जो अनदेखा तनाव है, वह विभिन्न प्रकार से अभी भी जारी है। चूँकि बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्ध के अनुभवों के बाद लोकतंत्र और राज्य की कल्याणकारी भूमिका की अवधारणा विकसित हुई, इसलिए प्रत्येक बच्चे के औपचारिक रूप से शिक्षित होने और इस शिक्षा के उद्देश्य और प्रकृति के बारे में चिन्ता करने की आवश्यकता भी बढ़ी। भारतीय संविधान ने सामाजिक पदानुक्रम में यथास्थिति को बनाए रखने और विकास के एक सामान्य कार्यक्रम में सभी को शामिल करने के बीच मौजूद संघर्ष को प्रतिबिम्बित किया। उद्देशिका में ऐसी प्रतिबद्धता व्यक्त की गई जिसे हासिल करना मुश्किल था और प्रशासकों के लिए भी इसे स्वीकार करना और इसपर विश्वास करना कठिन था।

1986 की शिक्षा नीति ने तनाव को चरम सीमा पर ला दिया और शिक्षा को मानव संसाधन विकास के रूप में परिभाषित करके वास्तविक मंशा और प्रचलित नीति और सार्वजनिक विश्वास पर ध्यान केन्द्रित किया। शब्दों का चयन स्पष्ट था : मानव 'संसाधन' थे, वे राष्ट्र के विकास के लिए थे (अर्थव्यवस्था और बाज़ार पढ़ें), जैसे कि विकास के लिए धन होता है। प्रत्येक व्यक्ति एक अलग-थलग व्यक्ति है और अर्थव्यवस्था और बाज़ार का लक्ष्य वितरण की समानता के बारे में किसी प्रकार की चिन्ता किए बिना उपभोग को अधिकतम करना है। अधिकतम व्यक्तिगत सुख, सम्पत्ति और सामग्री के उपभोग की सम्भावनाओं का निर्माण करने के लिए व्यक्तिगत आवश्यकताओं पर ध्यान केन्द्रित करना ही इसका सिद्धान्त है। व्यक्तियों की कोई सामाजिक ज़िम्मेदारी नहीं है, क्योंकि स्वीकृत सिद्धान्त यह है कि जिन लोगों के पास मूलभूत आवश्यक वस्तुएँ तक नहीं हैं, वे इस स्थिति में इसलिए हैं क्योंकि उन्होंने शिक्षा में निवेश नहीं किया है (अपने स्वयं के प्रयास के सन्दर्भ में और साथ ही उनकी शिक्षा के लिए उनके माता-पिता की प्रतिबद्धता, प्रयास और योगदान के सन्दर्भ में)। इस प्रकार, मानवीय पूँजी सिद्धान्त (ह्यूमन कैपिटल थ्योरी — एचसीटी) से प्रेरित इस विचार का तात्पर्य यह है कि इस तरह की अर्थव्यवस्था में शैक्षिक उद्देश्यों और गतिविधियों को बाज़ार विश्लेषण और ऐसे तकनीकी विचारों से तेज़ी-से निर्धारित किया जाना चाहिए जो किसी अन्य नैतिक या न्यायसंगत सिद्धान्तों की बजाय बाज़ार को बढ़ने में मदद करते हैं।

इसलिए आज अच्छी गुणवत्ता वाले औपचारिक शिक्षा कार्यक्रमों में सभी बच्चों को शामिल करने की मूलभूत चुनौती इसकी माँग करने वाले दार्शनिक आधारों में विश्वास की कमी है। संविधान की उद्देशिका की प्रतिज्ञा को न तो समझा जाता है और न ही स्वीकार किया जाता है। यह स्पष्ट है कि समावेशन के लिए अवसर की जिस समानता की आवश्यकता होती है, वह यह सुनिश्चित किए बिना नहीं मिल सकती कि विकास के लिए अवसर, सुविधाएँ, चयन के अधिकार और विकल्प, कुछ हद तक तुलनीय स्तर पर, सभी बच्चों के लिए उपलब्ध हों।

इस प्रक्रिया में इस बात में विश्वास करने की आवश्यकता है कि सभी बच्चे सीख सकते हैं और उन्हें समान ध्यान और देखभाल की आवश्यकता है। मानव क्षमता के सिद्धान्त में शिक्षा से यह अपेक्षित है कि वह प्रत्येक बच्चे को अपना रास्ता चुनने की जागरूकता, सम्भावना और क्षमता देगी और

वैसा बनने देगी जैसा वह बनना चाहता है। इसके विपरीत, जिन प्रचलित सिद्धान्तों पर शिक्षा प्रणाली बनी है, वह बच्चे को मानव पूँजी के एक भाग के रूप में विकसित करती है जो अर्थव्यवस्था में आय का उत्पादक या जेनरेटर हो ताकि बाज़ार के आदान-प्रदान को अधिकतम किया जा सके। यह निरूपण शिक्षा पर हुए सभी ख़र्चों को आर्थिक निवेश मानता है और आर्थिक उत्पादन की वृद्धि के रूप में इस निवेश के प्रतिफल की माँग करता है। चूँकि नौकरियों की संख्या के विस्तार की सम्भावना और ऊपरी गतिशीलता में गिरावट आई है, इसलिए अधिक लोगों के लिए शिक्षा वाली बात के लिए ख़तरा तेज़ी-से बढ़ रहा है। शिक्षा तेज़ी-से संकरी से और संकरी छलनी बन गई है जिसमें बहुत सारे बच्चों को छाना जाने लगा है। यही इसका कार्यकारी उद्देश्य बन गया है और इसका लक्ष्य व इसकी उपलब्धता तदनुसार समायोजित की जाती है। इस प्रकार कुलीन वर्ग के लिए महँगे अवसरों के निर्माण के साथ अच्छी गुणवत्ता की शिक्षा अधिक विशिष्ट और अधिक विशेषीकृत बन गई है। हालाँकि संकल्पनात्मक दस्तावेज़ और वर्णित उद्देश्य उद्देशिका की भावना और क्षमता सिद्धान्त की कुछ सूक्ष्म बातों के क़रीब हो सकते हैं, लेकिन वास्तविकता यह है कि अधिकारों की रूपरेखा भी ऐसी शिक्षा तक सीमित हो गई है जो कि न्यूनतम है और काफ़ी हद तक मानव पूँजी के सिद्धान्तों के साथ जुड़ी है।

References

Amartya Sen's Capability Approach and Social Justice in Education Edited by Melanie Walker and Elaine Unterhalter Palgrave Macmillan 2007 Chapter 1, 2 and 3

Baptiste I (2001) Educating Lone Wolves: Pedagogical Implications of Human Capital Theory First Published May 1, 2001 Research Article https://doi.org/10.1177/074171360105100302

Behar Anurag, Learning Curve Issue 25, Page 2.

Chapter 2, Education – Meaning-origins, History and philosophy of education.

Dewan H K. Learning Curve Issue 25, Page 17

History of Education – Wikipedia, Accessed 1/19/20 5:26 PM. Indian Sub-continent, China, Greece and Rome, Formal education in the Middle ages (500 – 1500 AD). https://en.wikipedia.org/wiki/

Nussabaum M C, (2011) Creating Capabilities: The Human Development Approach, Martha C Nussbaum, The Benklap Press of Harvard University Press, Cambridge, Massachusetts and London England, 2011

Stanford Encyclopedia of Philosophy

The Capability Approach. First published Thu Apr 14, 2011; substantive revision Mon Oct 3, 2016 https://plato.stanford.edu/entries/capability-approach/

The origins of the world's first school – steemit.com

Tomassello M. (2014) A natural history of Human Thinking, Harvard University press, 2014

Tomassello M. (1999) The Cultural Origins of Human Cognition, Harvard University Press, 1999



हृदय कान्त दीवान वर्तमान में अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय के 'अनुवाद पहल' में कार्यरत हैं। वे एकलव्य के संस्थापक समूह के सदस्य और विद्या भवन सोसायटी, उदयपुर के शैक्षिक सलाहकार रहे हैं। वे पिछले चालीस वर्षों से शिक्षा के क्षेत्र में विभिन्न प्रकार से और विभिन्न पहलुओं पर काम कर रहे हैं। विशेष रूप से वे शैक्षिक नवाचार और राज्य की शैक्षिक संरचनाओं के संशोधन के प्रयासों से जुड़े रहे हैं। उनसे hardy@azimpremjifoundation.org पर सम्पर्क किया जा सकता है।

अनुवाद : नलिनी रावल